प्रकाशक-

स्वामी श्रीनारायणदास [रिटायर्ड तहसीलदार]

श्रीविष्णु-ग्रन्थमाला, श्रीवृन्दावन

मूल्य सजिल्द ॥)

अजिल्द ।=)

कार्तिक, ८५ वि०

'निःश्वास' को प्रेमी-पाठकों ने बहुत पसन्द किया। इसका प्रथम-संस्करण इटावा से, द्वितीय-संस्करण भदसेरा (मैंनपुरी) के रईस और ज़मींदार पंडित श्रीलक्ष्मीचन्द्रजी तेहरिया ने कराया। इसी बीच में दो बार अंग्रेज़ी संस्करण भी प्रकाशित हो चुके। यह हिन्दी का तीसरा संस्करण प्रेमी-पाठकों के कर-कमलों में भेंट है।

श्रीनारायणदास

श्रीगुरुदेव ने अपने-आप कृपापूर्वक-भावों की भीख दी।

यद्यपि मैंने भाव-भीख के सरल; किन्तु आध्यात्मिक-पृष्ठों को समझा नहीं, तब भी हृदय ने अपनाया।

परमार्थ-पथ की कठिनाइयों से डर कर भागने की इच्छा की; किन्तु डरपोक की भाँति नहीं,—सोचा "अभी बहुत देर है"।

पिता प्रभु ने दया के हाथों से मुझ अधम को स्वयं पकड़ कर पथ पर फेंक दिया, और उपदेश किया,—"आगे बढ़ने से रुकते हो,तो पीछे मत लौटो, किन्तु वहीं खड़े होकर दयामय को पुकारो, वह सुनेगा।"

जन्म-जन्मान्तर के सङ्गी श्रीगुरुदेव के चरणों में भेंट करने के लिये अपने पास कुछ नहीं है। 'निःश्वास' श्रीगुरुदेव की वस्तु है, इसमें अपना कुछ नहीं; किन्तु भेंट करने की तीव्र-लालसा से पिता-प्रभु के मङ्गलमय उपदेशों को, प्रकाशित पुस्तक के रूप में, उन्हीं की वस्तु को, उन्हीं के श्रीचरणों में, भेंट है।

इन्द्र

रे मन, तुझे शान्त बनना है अथवा अशान्त ? यदि तू शान्त का इच्छुक है, तो तुझे दूसरों के अवगुणों से क्या लेना है ? यदि उसमें एक भी गुण है, तो उसे ग्रहण कर, जिससे तुझे शान्ति मिले। यदि तुझे एक भी गुण नहीं दीखता, तो अपना रास्ता पकड़, अवगुणों की खोज मत कर।

रे मन, तू दूसरों की बुराई आखिर क्यों करता है ? अपनी प्रतिष्ठा के निमित्त अथवा डाह से ? यदि तू डाह के कारण किसी की बुराई करता है, तो समझ ले अपनी उन्नति के मार्ग में तू आप ही गहरी खाइयाँ खोद रहा है और यदि दूसरों की बुराई करके अपने को

पर स्पष्ट न कहें, किन्तु तेरी पीठ के पीछे वे तेरी अवश्य बुराई करेंगे और यदि तू अपने को छोटा समझ कर सबसे नम्रतापूर्वक वर्ताव करेगा, तो बड़े से बड़ा अभिमानी भी तेरे सामने नहीं, तो तेरे चले जाने के पश्चात् तेरी अवश्य प्रशंसा करेगा।

मन, तुझे मैं एकान्त में समझाता हूँ। तू दूसरों के स्वार्थ की सर्वदा शिकायत क्यों करता रहता है? तू पहिले अपने को तो देख, क्या तू बिलकुल निःस्वार्थ है? क्या तू सब से निःस्वार्थ-भाव से ही मिलता है? यदि नहीं तो फिर तुझे दूसरों की शिकायत करने का क्या अधिकार है? पहिले तू अपने को निःस्वार्थ बना ले, फिर तुझे दूसरों की शिकायत करने का अवसर ही न मिलेगा। कारण कि स्वार्थी के पास ही स्वार्थी आता है, निःस्वार्थी के पास स्वार्थी की दाल नहीं गलती।

* * *

देख मन, यदि तू सब से अपनी सत्य-सत्य स्थिति कहेगा, तो वे भी अपनी यथार्थ-स्थिति तेरे सामने प्रकट

रे मन, जब तू सैकड़ों बार जलेबियों को खाकर फिर उन्हें खाने की इच्छा रखता है। कल भर पेट भोजन करके आज फिर उसी भोजन को चाहता है। नित्य एक ही प्रकार के पानी को दिन में कई बार पीता है, तो फिर धर्मोपदेशों की इस पोथी को देख कर तू नाक सिकोड़ कर यों क्यों कहता है कि—'इसे तो मैं पढ़ चुका हूँ।'

* * *

जब तू दूसरों के मनो-भावों को झट से समझ जाता है, तो क्या तुझे विश्वास है कि दूसरे लोग तेरे मनोगत-भावों को न समझ सकेंगे ? यदि ऐसी ही बात है, तो तू दूसरों से लगाव-लपेट की बातें क्यों करता है ? स्पष्ट क्यों नहीं अपने मनोगत-भावों को प्रकट करता ?

* * *

मधुमक्खी चाहे जितना भी सुन्दर, स्वादिष्ट और मीठा मधु एकत्रित क्यों न कर लें, फिर चाहे उससे दूसरों का उपकार ही क्यों न होता हो, परन्तु दीपक की

करेंगे। उससे तुझे बहुत अधिक लाभ होगा और यदि तू सब के सामने अपनी बात बढ़ा-चढ़ा के कहेगा, तो इससे लाभ कुछ होने का नहीं, उल्टे तुझे जो अनुभव हो सकता था, उससे भी तू वंचित रहा। यथार्थ-स्थिति आज नहीं, तो कल अवश्य ही प्रकट हो जायगी।

* * *

अच्छा, तैंने राम से मित्रता क्यों की थी? इसी-लिये न कि वह भी मुझसे मित्रता करे। फिर यदि उसके रुपये माँगने पर तैंने उससे मना कर दिया और अब वह तुझसे प्रेम नहीं करता, तो झींकता क्यों है? कारण कि मित्रता करने में तेरा भी तो स्वार्थ था।

तू चाहता क्या है? यही न कि मेरे पास क्षुद्र-हृदय के मनुष्य न आवें। यह तो बड़ी सहज बात है, अपने मन से तू क्षुद्रता को निकाल दे। क्षुद्र आदमी तेरे पास भी न फटकेंगे। चारे को देख कर ही चिड़ियाँ आती हैं। जब चारा ही न होगा, तो चिड़ियाँ अपने-आप लौट जायँगी; उन्हें भागना भी न पड़ेगा।

* * *

रे मन, जब तू सैकड़ों बार जलेबियों को खाकर फिर उन्हें खाने की इच्छा रखता है। कल भर पेट भोजन करके आज फिर उसी भोजन को चाहता है। नित्य एक ही प्रकार के पानी को दिन में कई बार पीता है, तो फिर धर्मोपदेशों की इस पोथी को देख कर तू नाक सिकोड़ कर यों क्यों कहता है कि—'इसे तो मैं पढ़ चुका हूँ।'

* * *

जब तू दूसरों के मनो-भावों को झट से समझ जाता है, तो क्या तुझे विश्वास है कि दूसरे लोग तेरे मनोगत-भावों को न समझ सकेंगे? यदि ऐसी ही बात है, तो तू दूसरों से लगाव-लपेट की बातें क्यों करता है? स्पष्ट क्यों नहीं अपने मनोगत-भावों को प्रकट करता?

* * *

मधुमक्खी चाहे जितना भी सुन्दर, स्वादिष्ट और मीठा मधु एकत्रित क्यों न कर ले, फिर चाहे उससे दूसरों का उपकार ही क्यों न होता हो, परन्तु दीपक की

जलती हुई लोय में प्राण निछावर करना पतङ्ग के ही हिस्से में आया है। लाख प्रयत्न करने पर भी मधुमक्खी में वह शक्ति नहीं आ सकती।

*　　*　　*

भगवान् बुद्ध ने एक मृत-व्यक्ति की लाश को देख कर अपने सारथी से पूछा 'छन्दक यह कौन है?' छन्दक के यह कहने पर कि 'हे प्रभो! यह मृत-प्राणी है, एक दिन सभी की यही गति होगी, वे राज्य-पाट छोड़ कर जङ्गलों में चले गये।

स्मशान के समीप लकड़ी बेचने वाला मनुष्य नित्य ही सैकड़ों आदमियों की लाशें देखता है। उसे सिवाय अपने पैसों के किसी दूसरी बात की चिन्ता ही नहीं! सभी मनुष्य बुद्ध के जैसे हृदय वाले थोड़े ही होते हैं!

*　　*　　*

कालिदास की स्त्री ने जब देखा कि मेरा पति मूर्ख है, तो उसने उसका तिरस्कार किया। कालिदास के हृदय में चोट लगी और जब वह पूर्ण विद्वान् होकर घर आया, तब अपनी स्त्री को मुँह दिखाया।

सैंकड़ों स्त्रियां अपने मूर्ख पतियों का तिरस्कार करती हैं। न तो सभी कालीदास जैसे विद्वान हो गये, न तुलसीदास के-से सुदृढ़ भक्त महात्मा ! संसार के लोग बाहर की घटनाओं को ही देखते हैं, भीतर कैसी ज्योति जर रही है ? उसे भला वे जान ही कैसे सकते हैं ?

* * *

नाटक खेलने वाले अपने खेल को पहले ही से ठीक किये रहते हैं, उन्हें जो खेल करने होते हैं, उन सबकी जानकारी रहती है, वे किसी घटना को नई नहीं समझते, किन्तु अन्य दर्शकगण सभी घटनाओं को कुतूहल की दृष्टि से देखते हैं, वे देखते हैं कि इस समय वह खेल हो रहा है सहसा दूसरा होने लगा। जिसे वे सहसा कहते हैं नाटक वालों के लिये यह निश्चित् पुरानी घटना है।

इसी प्रकार हम संसार में प्रत्येक दिन घटित होने वाली घटनाओं को देख कर उसे अकस्मात् हुई कहने लगते हैं। जिसे हम अकस्मात् कहते हैं, वह सर्वान्तर्यामी के लिये निश्चित् और साधारण सी बात है।

रे मन, जब तेरा बनाया हुआ आज का ही कार्य-क्रम जैसा कि तू चाहता है, वैसा नहीं होता, तो फिर सालों के कार्य-क्रम के चक्कर में पड़ना तेरे लिये व्यर्थ ही है।

* * *

दूसरों में तू जिन गुणों को देखकर प्रसन्न होता है, यदि वे ही गुण तेरे नित्य नैमितिक-जीवन के साथी बन जायँ, तो फिर तेरी प्रसन्नता का क्या ठिकाना रहेगा!

* * *

जितनी ही प्यारी वस्तु का बलिदान किया जायगा उसके उपलक्ष्य में उससे भी प्यारी वस्तु की प्राप्ति होगी। बलिदान का महत्व वस्तु से नहीं, किन्तु हृदय से जाना जाता है।

* * *

तू अपनी तर्कनाशक्ति के द्वारा इस विश्व-ब्रह्माण्ड के नियन्ता को जानना चाहता है ? तुझे पता नहीं कि जिसने इस विश्व को सृजा है, वह असली तर्क का उद्गम स्थान है। उसके तर्क के सामने तेरे तर्क का उतना ही महत्व है जितना कि अनन्त जलराशि के सम्मुख एक

छोटे-से जलकण का। उतने तर्क को ही पाकर तू उस तर्क-निधि की थाह लेना चाहता है। बावरे, तू भूल रहा है! यदि तू यथार्थ में कुछ जानना ही चाहता है, तो तर्क का आश्रय छोड़, हृदय का पल्ला पकड़। हृदय से कुछ अनुभव कर भी सकता है। उसमें प्रेम को स्थान दे, भक्ति से वह बँध सकता है!

* * *

तेरा सिक्का यदि खरा है, तो तू भले ही चोरों में भी जाकर उसका व्यवहार कर। तुझे धोखा कभी नहीं होने का! यदि तुझे अपने सिक्का के खरे होने में स्वयं ही सन्देह है, तो बात दूसरी है।

क्षमा, शील, प्रेम, शिष्टाचार आदि सद्गुणों का प्रयोग सब के साथ बिना किसी भेद-भाव के कर सकते हैं। सचाई से कोई भी मुँह नहीं मोड़ सकता है। यह बात दूसरी है कि वह स्वयं भले ही इसका उपयोग न करें, किन्तु इसकी उपयोगिता में कोई भी आपत्ति नहीं करने का!

* * *

किसी वस्तु में महत्व थोड़े ही है, उसके उपयोग में ही महत्व है। प्रेमानन्द की बात सुनने को लोग क्यों लालायित रहते हैं; इसीलिये न कि वह अपनी वाणी का व्यर्थ उपयोग नहीं करता। रामजी की बात सुन कर भी लोग उसकी उपेक्षा क्यों करते हैं, इसलिये कि वह व्यर्थ बकता रहता है।

* * *

तैंने अपने जीवन में कितने आदमियों को मरते देखा है और कितनों को जन्मते ? बहुतों को न, तब फिर क्या तुझे विश्वास नहीं कि, एक दिन तुझे भी काल के गाल में जाना है। यदि हाँ, तो इस निश्चय को तू दिन में कितनी बार स्मरण करता है ?

संसार के सभी कार्य्य करते समय यदि तुझे इस निश्चय का स्मरण बना रहे, तो फिर तुझसे बुरे काम कभी हो ही नहीं सकते।

* * *

जिस हृदय में प्रेम है, उसमें लोभ कहाँ ! प्रेमी प्रेम करते समय धन नहीं देखता, विद्या नहीं देखता, बुद्धि नहीं देखता, कुल नहीं देखता, उच्च-नीच का विचार

नहीं करता, अन्तिम परिणाम की ओर वह दृष्टिपात नहीं करता। वह तो देखता है खाली हृदय। जहाँ वह शुद्ध, स्वच्छ और प्रेम से परिपूर्ण हृदय देखता है, वहीं बिना कुछ आगा-पीछा किये टूट पड़ता है। प्रेमी के हृदय को अपने हृदय में मिला कर एकी-भाव कर लेता है।

* * *

अयि महत्वाकांक्षा रखने वाले सज्जन! अयि महापुरुष बनने की इच्छा वाले पुरुष! जरा ठहर कर हमारी दो बातें सुनता जा, तब आगे बढ़ना।

देखना, खूब समझ-सोच कर कदम बढ़ाना। बड़ी-बड़ी व्याधायें वेश बदल कर तेरे सामने आवेंगी, उनकी बातों में बहक मत जाना। उनमें सार कुछ भी नहीं है, खाली प्रलोभन भर है।

एक बार विषय का भी आनन्द लेना चाहिये। 'संसार में थोड़ा-थोड़ा सभी का अनुभव करना चाहिये' ये तुझे गिराने के लिये ही दलीलें हैं। विषयोपभोगों में रत हुए मनुष्यों में से तैंने किसी को सुखी पाया है?

यदि नहीं, तो फिर अनुभूति का क्या अनुभव करना ? पिसे को और क्या पीसना ? आगे बढ़ ।

* * *

"जब कुछ है ही नहीं, तो त्याग किसका करें ?" ये जाल के भीतर के दाने हैं, तुझे जाल नहीं दीखता। खाली दानों को ही देख कर तू उन पर गिरना चाहता है ! अरे ! वस्तुओं के छोड़ने को त्याग थोड़े ही कहते हैं। वस्तुओं को त्याग कर भी बहुत से अत्यागी बने हुए हैं, अनेक जन्मों की जो वासनायें तेरे अन्दर भरी हुई हैं, असल में उन्हें ही तो छोड़ना है। उनके लिये यह आवश्यक नहीं है कि चौबीसों घण्टे तू विषयोपभोगों की सामिग्री जुटाने में ही लगा रह। उनके छोड़ने को एकान्त में निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है।

* * *

पका आम प्रयत्न करने पर भी पेड़ में लगा नहीं रह सकता। वह अपने-आप ही वहाँ से अलग हो जायगा, दूसरे लोग स्वतः ही उसके द्वारा आनन्द का उपभोग करेंगे। जो प्रबल-वायु के झोकों से अथवा किसी के संसर्ग से विना पके ही गिर पड़ेगा, वह या तो दूसरों

के दाँत खट्टे करेगा अथवा सड़ कर दुर्गन्धि उत्पन्न करेगा, उसकी तीसरी कोई गति नहीं। पके आम की भाँति वह अपना स्थानापन्न छोड़ जाने की शक्ति भी नहीं रखता।

* * *

ओ! परोपकार की डींग मारने वाले पुरुष! तू देवालय, पुस्तकालय, अनाथालय और विद्यालयों के लिये सर्वदा ऊँचे-ऊँचे भवन बनाने की चिन्ता में व्यर्थ ही क्यों व्यस्त रहता है? तुझे यदि सचमुच में ही कुछ परोपकार करना है, तो उस परोपकार-निधि सच्चे प्रभु का पल्ला जाकर क्यों नहीं पकड़ता? सच्चे के आश्रय में रह कर तू भी सच्चा हो जायगा। फिर यदि तैंने आचार्य बन कर एक भी सत्-शिष्य तैयार कर दिया, तो मानो तैंने हज़ारों विद्यालय बनवा दिये। विद्यालय की ये कच्ची ईंटें तो एक दिन नष्ट भी हो जायँगी, किन्तु तेरा सत्योपदेश कभी नष्ट नहीं होने का।

* * *

ओ विरागी ! तू अपनी एक स्वतन्त्र कुटिया बनवा कर कुटिया की चिन्ता से जो मुक्त होना चाहता है, यह तेरा खाली भ्रम है । एक कुटिया की चिन्ता मिटते ही तुझे लाखों चिन्तायें आकर घेरने लगेंगी । लिपाई, पुताई, बनवाई, भोजन-रक्षा, अतिथियों की चिन्ता तथा अनेकों व्याधियाँ तुझे आ घेरेंगी । इससे तू और भी अधिक चिन्तातुर हो जायगा ।

अरे, इस विश्व-ब्रह्माण्ड में प्रभु के बनाये असंख्यों स्थान पड़े हैं, उनमें से किसी एक का आश्रय लेकर उस चिन्ता से मुक्त होने का प्रयत्न कर कि जिस चिन्तना के बिना ये सांसारिक-प्राणी नाना प्रकार की यातनाओं को भोग रहे हैं ।

* * *

साधक ! सावधान ! द्रव्य के रूप में, मित्र के रूप में, खाद्य-पदार्थों के रूप में, प्रशंसा और बड़ाई के रूप में वे ही हरि तेरी परीक्षा लेने के निमित्त आते हैं । ये तुझे भुलावा देने के लिये रूप हैं । यदि तू इन भुलावों में न पड़ा, तो भक्तवत्सल हरि स्वयं ही अपना असली स्वरूप तुझे दिखावेंगे ।

* * *

नवशिक्षित साधक ! तेरे निकट मित्र-दोस्त आते हैं, तो उन्हें देख कर तू क्षुब्ध मत हो, उन्हें तो साक्षात् पुरुषोत्तम समझ, प्रेमपूर्वक उनकी पूजा कर, अर्चना और वन्दना कर। कल्याणकारी प्रभु तेरा उसी में कल्याण करेंगे और तुझे आगे का पथ वे स्वयं बतावेंगे।

*　　　*　　　*

आत्मार्थी ! जब तेरा इस बात पर पूर्ण विश्वास है कि वे प्रभु दया के सागर हैं, तो तू आगे की चिन्ता क्यों करता है ? अनन्य-भाव से उनका ही आश्रय ग्रहण कर, फिर चाहे वे किसी ओर क्यों न ले जायँ।

*　　　*　　　*

ओ उपदेशक ! यदि तेरे उपदेशों में कुछ सचाई है, तो उसे प्रकाशित करने के निमित्त तुझे लोगों की खुशामद न करनी होगी। घास के ढेर के अन्दर रक्खी हुई अग्नि जिस प्रकार आप-से-आप ही प्रकाशित हो जाती है, उसी प्रकार तेरा सत्य भी स्वयं ही प्रकट हो जायगा।

*　　　*　　　*

रे मन, जब तुझे कोई कार्य करना होता है, तो तू फट से यह दलील उपस्थित कर देता है कि जब सब परमात्मा की इच्छा से ही हो रहा है, तो फिर मेरा अहंकृति-भाव कहाँ रहा ? बात ठीक है, किन्तु इस बात की भी कसौटी है कि कौन-सा काम स्वतः ही परमात्मा की इच्छा से हुआ है। इसकी पहिचान के दो अस्त्र हैं, हर्ष और विषाद।

संयोग और वियोग परमात्मा की इच्छा से ही होते हैं, यदि संयोग में तुझे सुख और वियोग में विषाद हुआ, तो समझना चाहिये, अहंकृति-भाव अभी मौजूद है।

* * *

सुख और दुःख सभी परमात्मा की इच्छा से होते हैं। यदि सुख और दुःख में विषाद उत्पन्न हो, तो समझ लेना चाहिये कि अभी अहंकृति-भाव बना ही हुआ है।

अच्छे और बुरे सभी काम परमात्मा की प्रेरणा से ही होते हैं। अच्छे कामों को करते हुए प्रसन्नता हो और यह भाव उत्पन्न हो कि ऐसा अच्छा काम मेरे ही द्वारा

हो रहा है, इसी प्रकार कोई बुरा कार्य हो जाय, तो उससे चित्त में खेद हो कि ऐसा बुरा कार्य मैंने क्यों किया, तो समझ लेना चाहिये कि अभी तक अहंकृति-भाव ने पिण्ड नहीं छोड़ा।

* * *

"इस काम के करने से लोग मेरी प्रशंसा करेंगे और अमुक काम मैंने किया, तो न जाने लोग क्या कहेंगे।" कार्य के आरम्भ करने के पूर्व यदि ये भाव हृदय में उत्पन्न हों, तो समझ लेना चाहिये कि अहंकार अस्त्र-शस्त्र लिये हमारे सिर पर खड़ा हुआ है।

* * *

"महाराज आप धन्य हैं, आपके सभी कार्य श्लाघ्य हैं। यह बड़ा ओछा आदमी है, ढोंग बनाये घूमता रहता है। पेट में कतरनी चलती रहती है।" इन पृथक्-पृथक् दो तरह की बातों को सुन कर जिसके हृदय में दोनों के सम्बन्ध में अलग-अलग दो तरह के भाव उत्पन्न हों, तो समझ लेना चाहिये कि हमारा निरभिमान बनने का विचार भी अहङ्कार-मूलक है।

* * *

"अरे, महाराज, आप कहाँ बैठ गये, आपके लिये तो वह उच्चासन खाली पड़ा है।" "जहाँ तुम्हारी तबियत आये, बैठ जाओ। तुम कोई धन्नासेठ थोड़े ही हो! उधर बड़े आदमियों के बैठने की जगह है, उधर न जाने पाओगे।" इन दो प्रकार के सत्कार-वाक्यों को सुन कर जिसके हृदय की गति दो ओर एक-दूसरे के प्रतिकूल बहती है, तो समझ लो कि अभी अहङ्कार-अहि का विष पूर्णरीत्या नहीं उतरा है।

* * *

अरे राम, इस वेष से यदि मैं गया, तो लोग क्या कहेंगे? अमुक स्थान में मुझे खूब बन-ठन कर जाना चाहिये। इनमें स्पष्टतया बनावट की बू है। बनावट को ही अहंकृति कहते हैं।

* * *

"आपने अभी मुझे पहिचाना नहीं मैं कौन हूँ, जाओ अमुक से कह दो, वे आये हैं।" किसी अवस्था विशेष को छोड़ कर ये भाव अहङ्कार-सूचक हैं।

* * *

ओ, उतावले उपदेशक! अनुयायियों के आगमन के निमित्त तू इतना अधिक उतावला क्यों होता है? यदि तेरे पास उस 'रसानाम् रसः' का कुछ भी सार होगा, तो मधु-लुब्धक भ्रमर तुझे गुप्त-से-गुप्त स्थान में भी खोज लेंगे। जिसके पास कस्तूरी है, उसके अस्तित्व के लिये पूछना नहीं पड़ता। उसकी सुगन्धि ही सुयोग्य ग्राहकों को उसके अस्तित्व का परिचय करा देती है।

"इस प्रकार का आचरण यद्यपि उत्तम है, तथापि मुझे लोक-शिक्षार्थ इसे न करना चाहिये।" यदि ऐसा भाव आवे, तो समझो अहङ्कार अंव्यक्त-रूप से अपना काम कर रहा है। नहीं तो अरे ओ पगले! तू क्या लोक-शिक्षा कर सकता है? शिक्षकों का शिक्षक तुझे जिस प्रकार की शिक्षा देगा, तुझे तो वही करनी होगी। निमित्त होकर कर्ता का अभिमान करना, यही तो तेरी निज की सम्पत्ति है और इसी के कारण ही तू प्रभु से बहुत दूर पड़ा हुआ है।

* * *

'चल हट' कहाँ की ज्ञान-गाथा बघारने लगा!

ऐसी सैकड़ों बातें मैंने लाखों बार सुनी हैं और अनेकों बार पुस्तकों में पढ़ी हैं।" ऐसे कहने वाले उस ज्ञानलव-दुर्विदग्ध पण्डित को देख कर पागल बना हुआ ब्रह्मज्ञानी पुरुष कुछ मुस्करा कर अपना रास्ता पकड़ लेता है।

* * *

तैंने यदि कर्म, उपासना, ध्यान, जप, तप, संयम, तीर्थ, व्रत या अन्य उपायों के द्वारा अपने को अखिलेश के पाद-पद्मों के पास पहुँचनें का अधिकारी नहीं बना लिया, तो साक्षात् ब्रह्मा से भी यदि तेरी भेंट हो जाय, तो उससे भी तेरा कुछ उपकार नहीं होने का। यदि उपरोक्त किन्हीं उपायों से तैंने अपने को अधिकारी बना लिया है, तो रास्ता चलता गड़रिया भी तुझे ऊँचा उपदेश देने के लिये पर्याप्त होगा।

* * *

यदि अहङ्कार उदय होता है, तो उससे मोह मत कर, बस फिर वह तेरा कुछ भी न बिगाड़ सकेगा। कंजूस मत बन, उदार बन जा। ज्यों ही अहङ्कार आवे, झट

उसे प्रभु के पाद-पद्मों में समर्पित करके उससे सदा के लिये अपना सम्बन्ध विच्छेद करले। इस प्रकार मुक्त-हस्त होने पर फिर वह तेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

* * *

तुझे सचमुच में यह जगत् गोरखधन्धा-सा दीखता है, तब तो पट्ठे! तुझे चिन्ता करने की कोई बात ही नहीं रह गई। इसी भाव को दृढ़ करले। यही भाव जहाँ दृढ़ हुआ नहीं, कि, फिर बेड़ा पार ही समझना।

* * *

यदि तेरे पास भाव हैं, तो पगली भाषा हाथ बाँधे तेरे सामने खड़ी रहेगी। और यदि कोरी भाषा ही भाषा है, उससे चाहे भोले-भाले हिरन डर कर भले ही भाग जायँ, किन्तु चालाक बँदरी से उस बनावटी आदमी द्वारा खेत की रक्षा होनी असम्भव है।

* * *

तेरे पास यदि धन है और किसी को उसकी अत्यन्त आवश्यकता है, तो तू उसे निःसङ्कोच दे डाल, जिसने पहिले तुझे दिया था, वही आगे भी तुझे देगा।

* * *

वह यदि मानी है, मान की इच्छा रखता है, तो तू उसे सम्मान-प्रदान क्यों नहीं करता ? अभिमानी से तू बचता है, इसके मानी तो यही होंगे कि तू मान का लोभी है। जो दोष तू उसे लगाता है, तुझमें भी उसका अभाव नहीं है! कंजूस सबके सामने अपने रुपयों की बात नहीं कहता, उसे इस बात का सदा भय बना रहता है कि ऐसा न हो, कोई मुझसे माँग बैठे। यदि तू सबके सामने उदार बनना चाहता है, तो मानी को सबसे अधिक सम्मान-प्रदान कर। कारण कि वह इसके लिये उत्सुक है।

* * *

जो तुझसे सम्मान के इच्छुक नहीं हैं, जो तुझसे खाली प्रेम की इच्छा रखते हैं, उनके गले में तू व्यर्थ में सम्मान का बोझ क्यों बाँधे देता है। अरे उन्हें छाती से लगा, गले भर प्रेम से मिल, उसके साथ दो मीठी-मीठी बातें कर, एकान्त में उससे अपनी कथा कह। उसकी पूछ। उसके साथ शयन कर, भोजन कर। उससे

यदि तैंने भेद-भाव रक्खा, तो समझेंगे कि तू प्रेम का पापी है।

* * *

"चोरी करना पाप है", इसे तो चोर भी जानता है, किससे चोरी करना पाप है, इसे पोथी वाले पण्डित भी नहीं जानते। एकान्त में स्थिर होकर मन से पूछ! क्यों वे चोर, तैंने चोरी तो नहीं की! यह ऐसा चोर है कि, सामने से चीज़ उठा ले जाता है और मालूम भी नहीं होने देता। मालूम होने पर सैकड़ों दलील पेश करता है। इसकी दलीलों की परख करना ही असल में सत्यता है।

* * *

अभी-अभी मन में कोई प्रबल वासना उठी, तुमने उसे दबा दिया। उसी क्षण कोई अच्छी बात सूझी तो उसे झट करने के लिये तैयार मत होना। कारण कि वही बुरी वासना वेश बदल कर इस रूप में तुझे ठगने को तेरे सामने आई है। उस कुटिनी से सदा सावधान रहना।

जो तुझे सम्मान की दृष्टि से देखता है, एक दिन उसने ही तेरे किसी कार्य पर तुझसे घृणा प्रकट की, तो उसी समय अपने मन के भाव की परख कर कि यह क्या विचार कर रहा है। यदि वह इस पर हँस रहा है, तो समझ ले कि जगत् का मिथ्यात्व-भाव परिपक्क हो चला है। यदि तुझे उस कार्य से खेद हो रहा है और साथ ही अपमान पर दुःख भी होता है, तो समझ ले कि मिथ्यात्व वाली बात केवल तोते के मुख से निकले हुए "राम नाम" के सदृश थी।

* * *

तू दूसरों से क्यों पूछता है कि, मेरे सम्बन्ध में आपकी क्या राय है! अपने से सदा ही पूँछता रह कि, अरे मैं क्या कर रहा हूँ? बस हो गया, इसके सदृश परखने वाला संसार में दूसरा कोई नहीं है।

* * *

कोकिला घोर जङ्गल में सुमधुर स्वर क्यों बोलती है? मालती का पुष्प अरण्य में किसे रिझाने को खिलता है? वृक्ष सुस्वादु फल किस लालच से देते हैं?

नीम खाकर भी गौएँ मीठा दुग्ध किसके भय से देती हैं? जङ्गल में मोर किसे प्रसन्न करने को नृत्य करता है? ऐसा करना इन सब का स्वभाव ही है। इसी प्रकार सत्-पुरुष किसी को दिखाने के लिये उत्तम कार्यों का अनुष्ठान नहीं करते। उत्तम कार्य करना और सब के साथ सद्-व्यवहार करना उनका स्वाभाविक ही गुण है।

* * *

चाहे तो लोभ कर, चाहे उदार बन जा; तेरे लिये दोनों ही दरवाज़े खुले हैं। एक दरवाज़ा तेरे लिये बिलकुल सामने ही है। वह देखने में मनोहर और चित्ताकर्षक है, किन्तु उसके बाहिर निकलते ही इतनी दुर्गन्ध है कि, तेरी नाँक फटने लगेगी और तू थोड़ी ही देर में तिलमिला उठेगा, जीवन दुःखमय और सन्तापमय हो जायगा। दूसरा दरवाज़ा तेरे पीछे है, देखने में वह ऐसा भला मालूम नहीं देता; किन्तु उसके बाहिर इतनी अधिक सुगन्धि है कि, तू मस्त हो जायगा और मारे आनन्द के नृत्य करने लगेगा। दस आदमी तेरी वाह-

वाह करेंगे। किन्तु तू आनन्द में ही इतना मस्त होगा कि, उनकी ओर कुछ ध्यान ही न देगा।

* * *

तेरे पास यदि कोई स्वार्थ-बुद्धि से आता है, तो तू उससे घृणा मत कर। तुझसे जहाँ तक हो सके, उसकी सहायता ही कर। यदि तू भी इस बात की इच्छा रखता है कि, कोई भी आदमी मेरे पास निःस्वार्थ-भाव से आवे, तव तो तू भी स्वार्थी ही हुआ। फिर तुझमें और उसमें अन्तर ही क्या है!

* * *

आख़िर तू चाहता क्या है? कीर्ति और सम्मान! इनके पाने का तैंने उपाय क्या सोच रक्खा है? दूसरों की निन्दा! तव तो असम्भव है। वकरी के वदले हाथी तुझे कौन दे देगा? यदि तू सम्मान चाहता है, तो दूसरों को तू जितना भी दे सकता है, सम्मान दे। उसके वदले में वे ही तुझे सम्मान-प्रदान करेंगे और कीर्ति का प्रचार करेंगे।

* * *

रे मन, तू विश्वासी बनना चाहता है या अविश्वासी? यदि विश्वासी बनना चाहता है, तो भविष्य की चिन्ता छोड़ दे, कारण कि चिन्ता और अविश्वास पर्यायवाची-शब्द ही हैं।

* * *

तू ज़रा धैर्य धारण करके मेरी बातें सुन, तो तुझे सब कुछ बताऊँ। अच्छा तू स्मरण कर कि आज तैंने कितने काम सोचे थे, कितने मनसूबे बाँधे थे। उनमें से कितने तेरे पूरे हुए? तेरी प्रबल-इच्छा होने पर भी अमुक-अमुक काम क्यों नहीं हो सके। इससे विदित होता है कि तू इच्छा करने ही भर को है, कार्य तो कोई दूसरा ही कराना चाहता है, वह कराता है। जब तू परतन्त्र ही है, जब तेरे मन-चीते काम होते ही नहीं, तो व्यर्थ में आगे की चिन्ता करने के श्रम में क्यों पड़ता है? अपने को सर्वतोभावेन स्वामी के चरणों में समर्पण क्यों नहीं कर देता।

* *

जब कोई तेरी झूठी बुराई करे, तो तू खुश हो, कारण कि बुराई करने वाला तुझे बड़ा समझता है और स्वयं अपने को निर्बल। निर्बल मनुष्य जब सबल मनुष्य का कुछ बिगाड़ नहीं सकता और बहुत खोजने पर भी उसमें कोई बुराई नहीं पाता, तो विवश होकर झूँठी ही बुराई करने पर उतारू हो जाता है।

* * *

जाड़े की औषधि अग्नि है। भूख की औषधि भोजन।
पिपासा की औषधि पय है।
उष्णता की औषधि शीतलता है।
क्रोध की औषधि विचार है।
अहङ्कार की औषधि अपमान है।
काम की औषधि विषयों में दोष-दृष्टि है।
लोभ की औषधि दान है। सिद्धि की औषधि कष्ट है।

* * *

संसार के प्रत्येक-पदार्थ में छाप लगी हुई है। जिस वस्तु पर जिसकी छाप लगी होगी, वह उसे अवश्य ही प्राप्त होगी और जिस पर दूसरे की छाप है, वह लाख

प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल सकती। फिर व्यर्थ में चिन्ता क्यों करता है। तेरे सामने जो वस्तु आवे, उसके सम्बन्ध में उसी समय सोच ले कि न जाने इसमें किसकी छाप है।

* * *

भजन किसे कहते हैं? सत्य के अनुसन्धान को।
सत्य का क्या स्वरूप है? जिसमें भय का लेश भी न हो।
भय क्यों होता है? अविश्वास से।
अविश्वास की उत्पत्ति कैसे होती है? प्रेम के अभाव में।
प्रेम कब हो सकता है? जब द्वैधी-भाव मिट जाय।
द्वैधी-भाव मिटने पर क्या होता है?
त्याग करने की शक्ति उत्पन्न होती है।
त्याग का परिणाम क्या है? शान्ति।
शान्ति के सरल और संक्षेप उपाय क्या हैं?
प्रेम, त्याग, विश्वास और अद्वैत-भावना।

* * *

ग्राह्य क्या है? चार वस्तु ग्राह्य हैं।
कौन-कौन-सी? श्रद्धा, शील, सहानुभूति और सत्य।

निःश्वास

त्याज्य क्या है ? चार वस्तु त्याज्य हैं।

कौन-कौन-सी ?

पद, प्रतिष्ठा, पैसा और सांसारिक सुखों की इच्छा।

यति किसे कहते हैं ? संयम जिसका सदा साथी रहता हो।

यतियों को अत्यन्त त्याज्य वस्तु क्या है ?

विषय-वासनाओं की चिन्तना।

जीवन का चरम-लक्ष्य क्या है ?

प्रभु के पाद-पद्मों का निरंतर सेवन।

प्रभु के पास पहुँचने का एकमात्र उपाय क्या है ?

सरलता और सत्य सेवन।

जीवन में सरलता किस प्रकार आ सकती है ?

सद्-असद् के विवेक से।

सद् क्या है और असद् किसे कहते हैं ?

जो अक्षर है, वही सद् है और जो क्षर है, वह असद्।

क्षर, अक्षर की कसौटी क्या है ?

जिसके नाश की कल्पना हो सके, वह क्षर और जिसके नाश की कल्पना भी न हो सके, वही अक्षर है।

संसार के यावत् पदार्थ हैं, सभी तो नाशवान् हैं ?

इसीलिये सभी असद् हैं।

फिर सद् क्या रहा ?

जो इन सब के बाद शेष रहा, वही तो सद् है।

संसार के बाद तो कुछ भी शेष नहीं रहता ?

बस, जिसे "कुछ भी नहीं" कहते हो, वही सद् है।

हम नहीं समझे ?

समझ भी नहीं सकते, क्योंकि जिसके द्वारा तुम समझा करते हो, वह भी असद् है। असद्-वस्तु असद् को ही समझ सकती है, सद् उससे परे की चीज़ है।

अच्छा तो जिसके अन्त में कुछ भी न रहे, वह कैसे सद् है ?

भाई, शेष दो पदार्थों में रहना संभव है या ससीम में वह 'एकमेवाद्वितीयम्' है और उसकी सीमा नहीं; वह असीम है।

कभी तो उसकी सीमा होगी ही ?

यह तुम्हारा प्रश्न ही मिथ्या है। सीमा दो पदार्थों में ही संभव है। यहाँ तक जल है, उसके पार पृथ्वी के

व्यवधान से जल की सीमा बँध गई, किन्तु वह तो अपार है। उसका पार ही नहीं, क्योंकि वह अद्वितीय है, इसीलिये असीम भी है; अन्त न होने से वह अनन्त भी कहा जाता है।

जब उसके अनादि, अनन्त, असीम और अपार आदि नाम हैं, तो फिर उसका रूप भी होना ही चाहिये, क्योंकि विना रूप के नाम संभव नहीं!

उसके नामों की विद्वान् लोग कल्पना भी नहीं करते हैं।

असल में तो वह नाम और रूप दोनों ही से परे है।

यदि ऐसा ही है, तो उसे जानें कैसे? श्रद्धा से।

किस प्रकार की श्रद्धा से वह जाना जा सकता है?

इस प्रकार की श्रद्धा से कि उसके सिवाय कुछ है ही नहीं।

और यह जो संसार है?

इसे भी उसी का रूप समझो।

हमें जो यह नाना-रूपों में भासता है, इसे एक कैसे समझें?

नानात्व की खोज करो कि असल में यह नानात्व है क्या!

अनेक पदार्थ जो हैं?

इन अनेकों में एकत्व देखो। घड़ा, करवा, सकोरा, नाद इन सभी में ऊपर, नीचे, दायें, बायें मृत्तिका है। अतः 'मृण्मय-पात्र' यही अनेकत्व में एकत्व है।

यह तो ठीक हुआ, किन्तु नाम जो अनेक हैं? क्या एक वस्तु के अनेक नाम भी हो सकते हैं?

हो क्यों नहीं सकते! राजा को प्रजा-जन 'राजा' कहते हैं। उसकी पत्नी 'पति' कहती है। उसका पुत्र 'पिता' कहता है। उसका विपक्षी 'शत्रु' कहता है। उसका शिष्य 'गुरु' कहता है। पृथक्-पृथक् नाम वाला वह राजा एक ही है या अनेक! अच्छा तो अब समझे संसार में यावत् नाम हैं, सब उन्हीं के हैं और सभी सद् हैं।?

हाँ, ठीक है, यही बात है।

तुमने पीछे यह कहा था कि, सभी नाम असद् हैं, वह कैसे?

भाई, वह एक है। या तो सभी एक के ही नाम हैं या ये सभी नाम असद् हैं, एक वही सद् है। दोनों में कुछ अन्तर नहीं। साठ कहो या तीन बीसी, शब्दों का अन्तर है, भाव का नहीं।

अच्छा, तो सद्-असद् के ज्ञान से सरलता कैसे आ जायगी ?

सरलता का स्वरूप जानने के पूर्व हमें असरलता का ज्ञान होना चाहिये।

असरलता तो बनावट को ही कहते हैं। जैसे कोई पण्डित नहीं है और पण्डित का-सा वेष बना कर अपने को पण्डित कहता है, तो वह असरल हुआ ?

ठीक है, परमात्मा इसी प्रकार के असरलों से दूर भागते हैं। असरल मनुष्य कब बनता है !

तभी जब कि पण्डित में और मूर्ख में भेद मानता है। भेद दो में ही होना संभव है ?

हाँ यही बात है। जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाय कि मैं जो अपने इस पञ्च-भौतिक शरीर को ही "मैं" माने बैठा हूँ, असल में 'मैं' उतना ही नहीं हूँ,

किन्तु मेरे अतिरिक्त कोई और है ही नहीं। जब मैं ही हूँ, तो फिर मैं किसके सामने अहङ्कार करूँ, किसके सामने बनूँ, सभी तो मेरे स्वरूप हैं! एकान्त में कोई अपने से लज्जा करता है!

फिर सत्य क्या रहा?

सत्य यही कि मैं ही सत् हूँ? इसी के पूर्ण निश्चय को सत्य कहते हैं।

फिर सत्य और सरलता के द्वारा प्रभु को कैसे पावेंगे?

— फिर भी वही संशय! अरे पावेंगे कहाँ से! सरल और सत्य ही प्रभु का रूप है। सरलता धारण करके सत्य की उपलब्धि होने पर प्रभु फिर अलग तो नहीं रहे। साँभर की झील में जो पड़ा वही साँभर हो गया।

धन्य है! प्रणाम।

किसको प्रणाम?

किसी को नहीं, अपने आपही को।